मई दिवस : दुनिया के मज़दूरों एक हो!

1 मई दुनिया के इतिहास में एक ऐसा दिन है जो मज़दूरों को एकजुटता और संघर्ष की प्रेरणा देता है। यह हमें उस महान संघर्ष की याद दिलाता है, जब अमेरिका के साथ ही पूरे यूरोप में मज़दूरों के साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया जाता था और उनके काम के घंटे निर्धारित नहीं थे। इसके ख़िलाफ़ अमेरिका के शिकागो शहर में 1 मई, 1886 को भीषण संघर्ष हुआ। यह संघर्ष चार दिनों तक चला और इसमें मज़दूरों के खून से धरती लाल हो गई। पर मज़दूरों का यह संघर्ष रंग लाया और उनके काम के घंटे निर्धारित हो गए। कार्यदिवस 8 घंटे का तय हुआ। तब से लेकर आज तक पूरी दुनिया में मई दिवस एक श्रमि त्योहार की तरह मनाया जाता है। यह मज़दूरों को उनके ऐतिहासिक संघर्ष की याद दिलाता है। यह ठीक है कि दुनिया भर में मज़दूरों ने अपने संघर्ष की बदौलत कई जीतें हासिल की हैं, पर आज 21वीं सदी में जब दुनिया भर में मज़दूरों का राज स्थापित हो जाना चाहिए था, पूंजीवाद.साम्राज्यवाद का अंत हो जाना चाहिए था और समता पर आधारित समाज व्यवस्था की स्थापना होनी चाहिए थी, वहीं देखने में आ रहा है कि डेढ़ सौ साल पहले ही मज़दूरों ने जो अधिकार हासिल किए थे, वो भी अब उनसे छीने जा रहे हैं। यद्यपि यह पूंजीवादी व्यवस्था का मरण काल है, पर अभी भी यह काफी मजबूत दिख रहा है।

यही कारण है कि आज मज़दूरों से मनमाने तरीके से काम लिया जा रहा है। हमारे देश में ठेका प्रथा के तहत मज़दूरों का अकथनीय शोषण हो रहा है। काम के घंटे निर्धारित नहीं हैं। कम से कम मज़दूरी पर लोग 12 से 14 घंटे तक फैक्ट्रियों में पसीना बहाने को मजबूर हैं। फिर भी उनके साथ हर तरह के जुल्म हो रहे हैं। असंगठित मज़दूरों की हालत और भी खराब है। भारत के साथ ही पूरी दुनिया में मज़दूरों का आंदोलन पिछड़ता चला जा रहा है। प्रतिक्रियावादी ताकतें हर जगह सत्ता पर काबिज़ हैं। यह एक बहुत ही कठिन और चुनौतीपूर्ण समय है। मज़दूरों ने अपने संघर्ष से जो कुछ भी हासिल किया था, आज उसे वो खो देने की हालत में आ गए हैं। सवाल है कि ऐसी हालत में क्या करें। देखने में आ रहा है कि अब मज़दूर यूनियनें जो बड़े राजनीतिक दलों से जुड़ी रही हैं, चाहे वो वामपंथी हों या मध्यममार्गी, मज़दूरों के हित के लिए कुछ भी सार्थक कर पाने में अक्षम रही हैं। उनके संघर्ष की कोई राजनीतिक दिशा भी नहीं है। जब तक मज़दूरों के संर्घष की कोई स्पष्ट राजनीतिक दिशा नहीं होगीए तब तक उन्हें कुछ खास हासिल भी नहीं हो सकता। आज जितने ट्रेड यूनियन हैं, वो मज़दूरों को संघर्ष की सही दिशा से भटकाने में लगे हैं और फैक्ट्री मालिकानों के एजेंट के रूप में सामने आ रहे हैं। उनकी कोई राजनीतिक लाइन नहीं है। ऐसे में, मज़दूरों के लिए कोई सही राह नहीं मिल सकती। आज स्थिति ये है कि देश में दक्षिणपंथी शक्तियां केंद्र की सत्ता में आ चुकी हैं। केंद्र सरकार मज़दूर.किसान विरोधी क़ानून बना रही है। मोदी सरकार ने जो श्रम क़ानून बनाए हैं या उनमें संशोधन किया है, वह पूरी तरह मज़दूर विरोधी है। पर इन क़ानूनों का देशव्यापी एवं प्रभावी विरोध नहीं हो रहा है।

मई दिवस को एक रस्मअदायगी समझ लेना या त्योहार की तरह मना लेने से कोई लाभ नहीं होने वाला है। इस दिवस को संघर्ष के संकल्प दिवस के रूप में मनाना होगा और संगठन का नया ढांचा तैयार करना होगा। वर्तमान ढांचे पुराने पड़ गए हैं। ज्यादातर मज़दूर यूनियनों का नेतृत्व भ्रष्ट हो गया है और मालिकानों से मिल चुका है। इस भ्रष्ट ढांचे को तोड़ कर जब मज़दूर वैचारिक आधार पर संगठित होंगे और उनके बीच से नेतृत्व निकलेगा, तो वही मज़दूर वर्ग के संघर्षों को एक नए अंजाम तक ले जा सकता है। यह समय की चुनौती है और इसे स्वीकार करना ही होगा। मार्क्स.एंगेल्स के इस नारे को कभी नहीं भुलाया जा सकता है . श्दुनिया के मज़दूरों एक हो।

मई दिवस का संदेश

हम मेहनतकश जगवालों से
जब अपना हिस्सा मांगेंगे
इक खेत नहीं इक देश नहीं
हम सारी दुनिया मांगेंगे

यां सागर-सागर मोती हैं
या परबत-परबत हीरे है
ये सारा माल हमारा है
हम सारा ख़जाना मांगेंगे

जो ख़ून बहा जो बाग़ उजड़े
जो गीत दिलों में क़त्ल हुए
हर क़तरे का हर गुंचे का
हर गीत का बदला मांगेंगे

ये सेठ ब्यौपारी रजवाड़े दस लाख
तो हम दस लाख करोड़
ये कितने दिन अमरीका से
जीने का सहारा मांगेंगे

जब सफ़ सीधी हो जायेगी
जब सब झगड़े मिट जायेंगे
हम हर इक देश के झंडे
पर इक लाल सितारा मांगेंगे

-फ़ैज़

मन्त्री पद को तरसते विधायक बेचारे

फ़रीदाबाद (म.मो.) फ़रीदाबाद-पलवल ज़िले से 9 विधायक हैं और मन्त्री एक भी नहीं। इसी ज़िले से कभी दो-दो, तीन-तीन मन्त्री भी रह चुके हैं। इस लिये मुख्यमंत्री मनोहर लाल खट्टर जब भी मन्त्रिमंडल विस्तार का शिगूफ़ा छोड़ते हैं तो यहां के (भाजपा) विधायकों की धड़कनें तेज़ होने लगती हैं। राजनीति को समझने वाले बखूबी समझते हैं कि मुख्यमंत्री चाहे कोई भी हो वह अपने मन्त्रिमंडल का विस्तार करने की अपेक्षा शिगूफ़े ज़्यादा छोड़ता है। इससे मन्त्री पद को तरसते बेचारे विधायकों की आस बंधी रहती है। वे अपने आप को मुख्यमंत्री का अधिक से अधिक वफ़ादार साबित करने की होड़ में जी-जान से जुटे रहते हैं। और एक बार विस्तार हो गया तो फ़िर कोई आस बाकी नहीं रहती। इसलिये अधिक काईंयां मुख्यमंत्री पूरा विस्तार कभी नहीं करते। वे एक दो सीट सदैव बचाकर ही रखते हैं ताकि बेचारों की आस जड़-मूल से समाप्त न होवे।

इस ज़िले के 9 विधायकों में से भाजपा के केवल 3 ही हैं, इसलिये मुकाबला भी इन्हीं में से हो सकता है। बल्लबगढ से विधायक मूलचंद शर्मा को इसलिये रेस में नहीं माना जाता क्योंकि उनके सगे समधी रामबिलास शर्मा पहले से ही कई महत्वपूर्ण एवं भारी-भरकम मन्त्रालय कब्जाये हुए हैं तथा मूलचंद को साधे रखना भी उन्हीं के जिम्मे है।

बाकी बचे दो-विपुल गोयल और सीमा त्रिखा। अब असली मुकाबला इन दोनों के बीच ही बनता है। यह मुकाबला दीये और तूफ़ान के बीच जैसा लगता है। भाजपा विधायक दल के प्रबलतम धनपशुओं में से कैप्टेन अभिमन्यु के बाद कोई ठहरता है तो वह है विपुल गोयल। बिना विधायक बने ही जिसने लूट-कमाई के बड़े अम्बार लगा लिये हों तो मन्त्री पद मिलने के बाद तो वह गज़ब ही ढा देगा। जाहिर है ऐसे में वह पार्टी व संघ की भी पर्याप्त 'सेवा-पानी' कर पायेगा। अखबारों में बार-बार बयान छपवाने के बावजूद बेशक शहर की गलियों-सड़कों से वे कुत्तों और गायों को नहीं हटवा सकें तो क्या हुआ, दो बार नाहर सिंह क्रिकेट स्टेडियम में तमाशा तो करवा ही चुके हैं। और फ़िर सबसे बड़ा काम जो कोई भी विधायक नहीं कर पाया वह उन्होंने राष्ट्रीय ध्वज को लहरा कर पूरा कर दिया। 250 फ़ीट ऊंचा झंडा गार कर उन्होंने देश के 'गौरव' को रसातल से उठा कर 250 फ़ीट ऊंचा तो कर ही दिया। जब नवीन जिंदल मात्र 100-100 फ़ीट ऊंचे झंडे लहरा कर 10 वर्ष तक इस देश को लूट सकता है तो बेचारे विपुल ने क्या गुनाह कर रखा है? लूट का एक अच्छा मौका पाने का हक तो उनका भी बनता ही है।

वैसे पूरे ज़िले (फ़रीदाबाद-पलवल) के वासियों को इसके लिये चिन्तित होने की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्हें यह वहम पालने की भी कोई जरूरत नहीं है कि ज़िले को मन्त्रिमंडल में प्रतिनिधित्व मिलने से उनका कोई भला होने वाला है। गत हुड्डा राज में अकेले फ़रीदाबाद से महेन्द्रप्रताप सिंह, शिवचरण लाल व बल्लबगढ से शारदा राठौर मन्त्रिमंडल में शामिल थे।

पलवल से विधायक न होते हुए भी कर्ण दलाल वहां बतौर मुख्यमंत्री ही काम करते थे। इस सबके बावजूद आम जनता को क्या मिला? ठनठन गोपाल। तमाम सरकारी स्कूलों व अस्पतालों की दुर्दशा, राशन डिपो से लेकर बिजली, थाना व तहसील आदि हर सरकारी दफ़्तर में जनता की लूट खुलेआम सरकारी संरक्षण में जारी थी। इसलिये ज़िले से मन्त्री चाहे कोई भी बने जनता का शोषण व उत्पीड़न ज्यों का त्यों ज़ारी रहेगा। हां मन्त्री पद पाने वाले के ज़रूर पौ बारह हो जायेंगे।

ठेका-कर्मियों के साथ भेदभाव के खिलाफ़ एक लड़ाई

-श्यामल कुमार

देश की समस्यायें में सबसे अहम समस्या बेरोज़गारी है। सरकार इस समस्या को खत्म करना तो दूर, इस पर बात करने से भी कतराती है। आज हर क्षेत्र में सरकार ठेका प्रथा को बढावा दे रही है। आज से 44 साल पहले देश की संसद ने ठेका मज़दूर (संचालन एवं उन्मूलन) कानून 1970 बनाया था। तब सरकार ने यह माना था कि ठेका मज़दूरों की भर्ती के चलते कई समस्याएं सामने आ रही हैं। इसे पूरी तरह से खत्म करने के लिये ही यह क़ानून बनाया गया था। दूसरी पंचवर्षीय येजना में योजना आयोग ने त्रिपक्षीय कमेटियों (सरकार-मालिक-मज़दूर) की सिफ़ारिश व आम राय से यह माना था कि-

1. जहां कहीं भी सम्भव है, ठेका मज़दूरों द्वारा किये जा रहे काम को ही समाप्त कर दिया जाय।

2. जहां कहीं यह सम्भव न हो, वहां ठेका मज़दूर से काम लिया जाय, वेतन अदायगी व अन्य जरूरी सुविधाएं सुनिश्चित की जाएं।

इन दोनों कामों को लागू करवाने की जिम्मेदारी केन्द्र व राज्य सरकारों के अधीन काम करनेवाले श्रम विभाग की थी। परन्तु सरकार और श्रम विभाग ने इस कार्य को ईमानदारी से अंजाम नहीं दिया है।

इस क़ानून के बनने के 44 वर्षों का अनुभव यही है कि सरकार ने ठेका मज़दूरी के संचालन व उन्मूलन की दिशा में कोई गम्भीर प्रयास नहीं किए। उल्टा सरमायादारों के हक़ में इस प्रथा को नग्न रूप से बढावा दिया गया। 1990 के बाद से नवउदारवादी नीतियों के तहत इसमें और तेज़ी आयी है।

शर्म की बात तो यह है कि निजी कारखानों/संस्थानों के इस खेल में सरकारें भी शामिल हो गयी हैं। सरकारी क्षेत्र में होनेवाले कार्य का 70 से 80 प्रतिशत ठेका मज़दूरों द्वारा किया जा रहा हैं। यहां तक कि सार्वजनिक इकाईयों, सरकारी अस्पतालों, स्कूलों, कॉलेजों, डीटीसी, दिल्ली जल बोर्ड, बिजली विभाग, एमसीडी इत्यादि में डॉक्टरों, शिक्षकों, ड्राईवरों, कन्डक्टरों व कर्मचारियों की स्थायी पदों पर भर्ती न करके साल दर साल ठेके पर भर्ती की जा रही है।

इंडियन स्टाफ़िंग फैडरेशन की रिपोर्ट के अनुसार आज पूरे देश में लगभग 1 करोड़ 23 लाख लोग सरकारी विभाग में कार्यरत है, जिनमें 69 लाख लोग केवल ठेके पर काम कर रहे हैं। सरकार मानती है कि ठेका मज़दूरों को समान काम करने के बावजूद समान वेतन का भुगतान नही किया जा रहा है। यही असमान व्यवहार विद्रोह की ओर मज़दूरों को संघर्ष के लिए प्रेरित करता है, जिसके गम्भीर परिणाम आये दिन देखने को मिलते हैं। मारुति उद्योग, गुडगांवा में एक प्रबन्धक की मौत, उस घटना के बाद 147 मज़दूरों को जेल में बंद कर दिया जाना और उस औद्योगिक क्षेत्र में लगातार बढता असन्तोष इसका एक उदाहरण है। उसके बाद सड़क से लेकर संसद तक भारी हंगामे के बाद तत्काल सरकार ने हस्तक्षेप किया चीफ़ लेबर कमिश्नर (सेंट्रल) ने 23 जनवरी 1913 को एक सरकुलर सभी मंत्रालयों को जारी किया, जिसके तहत-

अगर कोई ठेका कर्मी अपने प्रधान नियोक्ता के स्थायी कर्मी के बराबर कार्य करता है, तो ठेकेदार द्वारा नियुक्त ठेका कर्मी का वेतन, छुट्टी और सेवा शर्तें उस संस्था के प्रधान नियोक्ता के वर्कर के बराबर होंगी।

इस सरकुलर में ठेका मज़दूर (संचालन एवं उन्मूलन) कानून 1970, और उसके केन्द्रिय नियम के तहत उल्लंघन करनेवाले पर क़ानूनी कारवाई करने की बात जोर देकर कही गयी।

यह सरकुलर सभी केन्द्रिय मंत्रालयों के साथ ही साथ चेयरमैन, रेलवे बोर्ड को भी भेजा गया। रेलवे बोर्ड ने भी अपने एक सरकुलर के माध्यम से चीफ़ लेबर कमिश्नर (सेंट्रल) के सरकुलर को एमडी, इंडियन रेलवे कैटरिंग एण्ड टूरिज्म कॉर्पोरेशन (आईआरसीटीसी) सहित अपने सभी विभागों को भेजकर इस सरकुलर का कड़ाई से पालन करने का निर्देश दिया। लेकिन बात आयी-गयी हो गयी।

पिछले दिनों आईटी सेन्टर, आईआरसीटीसी, नई दिल्ली के ठेका कर्मियों ने जिनका काम अपने प्रधान नियोक्ता के स्थायी कर्मियों के समान था, इस भेदभाव के खिलाफ़ कदम उठाया। आईटी सेन्टर में केवल 57 आईआरसीटीसी (प्रधान नियोक्ता) के अपने कर्मी हैं, जबकि लगभग 265 ठेका कर्मी (ठेकेदार द्वारा रखे गये) पिछले 3 वर्षों से भीअधिक समय से कार्यरत हैं। इनमें कई लोग तो पिछले 10 वर्षों से भी अधिक समय से ठेके पर काम कर रहे हैं। कर्मियों को जानकारी दिये बिना समय-समय पर ठेकेदार बदल-बदलकर रिकार्ड में हेराफ़ेरी कर, आईआरसीटीसी (प्रधान नियोक्ता) द्वारा उन्हें ग्रेच्यूटी से वंचित रखा जाता है। साथ ही, एक तरफ़ तो अपने कर्मियों को आईआरसीटीसी हर महीने 40,000 रुपये वेतन व अन्य सुविधाएं देती है, जबकि समान योग्यता और अनुभव होने के बावजूद ठेका कर्मियों को सिर्फ़ 11,000-12,000 रुपये मासिक भुगतान करती है। यहां के ज़्यादातर ठेकाकर्मियों के पास पीएफ खाता नहीं हैऔर जिसके पास है भी उनका नियोक्ता के हिस्से का अंश और उनका अपना अंश, दोनों उन्हीं के वेतन से काटा जाता है। ईएसआई की सुविधा के लिये भी नियोक्ता अपना अंश नहीं देता। इसके किस्त की कटौती ठेका कर्मियों से ही की जाती है। 300 कर्मचारी होने के बावजूद वहां न तो साफ पीने का पानी, न अलग से कोई विश्राम गृह, न महिला कर्मियों के बच्चों के लिये पालना घर और न ही प्राथमिक चिकित्सा की व्यवस्था है। यह ठेका मज़दूर (संचालन एवं उन्मूलन) कानून 1970, का घोर उल्लंघन है। इतना सब कुछ ठेकेदार के कर्मी चुपचाप सहने को विवश थे। उनका भविष्य अंधकारमय और निराशजनक लगने लगा था।

आईआरसीटीसी के 125 ठेका कर्मियों ने ठेका मज़दूर क़ानून 1970 के तहत समान काम के लिये समान वेतन की लड़ाई छेड़ दी। पहले उन्होंने विभाग के स्तर पर ज्ञापन दिया।

इसका नतीजा यह हुआ कि ठेकेदार ने इन ठेकाकर्मियों की अगुआई करनेवाले सुरजीत श्यामल को सेवा खराब होने का बहाना करके नौकरी से निकाल दिया, जबकि उन्हें विभाग की ओर से अच्छे काम के लिये मेरिट अवार्ड मिल चुका है। अगले कदम के रूप में ठेका कर्मियों ने दिल्ली उच्च न्यायालय में याचिका दायर की, जिस पर सुनवाई करते हुए न्यायालय ने भारत सरकार आईआरसीटीसी और ठेकेदारी को नाटिस जारी किया है। 4 महीने बीत जाने के बावजूद अभी तक सरकार ने अपना जवाब नहीं दिया है।

ठेका कर्मियों के साथ भेदभाव और उनका अमानवीय शोषण आज हर विभाग में, हर कार्यालय में आम बात है। देश-भर में अलग-अलग विभागों के ठेका कर्मियों का आन्दोलन भी चलता रहता है। इस कानूनी लड़ाई का फ़ैसला क्या होगा यह कहना अभी मुश्किल है, लेकिन संगठित प्रतिरोध की दिशा में उठाया गया इन नौजवानों का कदम साहसिक, सराहनीय और उम्मीद जगानेवाला है।